भारत की नई पश्चिमोन्मुख नीति

*डॉ. फज्जुर रहमान सिद्दीकी**

भारतीय जनता पार्टी के सत्ता में आने के बाद संसद के संयुक्त सत्र के दौरान राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी के अभिभाषण से पश्चिम एशिया और उत्तरी अफ्रीका (वाना) (की चर्चा) की अनुपस्थिति ने राजधानी दिल्ली के राजनयिक हलकों में कुछ आशंकाएं और बेचैनी पैदा कर दी। लेकिन इसकी विवेचना एक अलग तरीके से की जा सकती है कि भारत-अरब संबंध इतने गहरे हैं कि भारतीय शासन/सरकार यह मानकर चल रही है कि राष्ट्रपति के अभिभाषण में इसका उल्लेख न किए जाने के बावजूद यह क्षेत्र भारतीय विदेश नीति का अभिन्न अंग बना रहेगा।

कुछ लोगों के लिए राष्ट्रपति के अभिभाषण से वाना की अनुपस्थिति, विश्व के विभिन्न क्षेत्रों के साथ राजनयिक संबंधों के विकास में भारत की बदलती प्राथमिकताओं की सूचक प्रतीत होती है। लेकिन हमें इतना आश्वस्त होना चाहिए कि विदेश नीति कहीं भी रातोंरात नहीं बदलती क्योंकि ऐसे किसी परिवर्तन के लिए दीर्घकालिक मूल्यांकन की जरूरत होती है। नि:संदेह, प्राथमिकताओं में प्रतीत होता यह बदलाव प्रधानमंत्री-निर्वाचित श्री नरेन्द्र मोदी के शपथ ग्रहण समारोह में सार्क राष्ट्राध्यक्षों को दिए गए निमंत्रणों में बखूबी प्रदर्शित हुआ। वर्तमान से भिन्न, सिर्फ दो दशक पहले वाना क्षेत्र भारतीय विदेश नीति के केन्द्रीय विषयों में से एक हुआ करता था। इस अलगाव को और ज्यादा जटिल मौजूदा समय बना रहा है जब यह क्षेत्र हाल के इतिहास के सर्वाधिक उथल-पुथल के दौर से गुजर रहा है। पिछले चार वर्षों में यह क्षेत्र अद्वितीय परिवर्तनों का साक्षी बना है जिसने संपूर्ण परिदृश्य को पूर्ण अराजकता की ओर धकेल दिया है और इस महत्वपूर्ण क्षेत्र को वैश्विक संघर्ष के केन्द्र में ला दिया है।

अरब जगत में राजनीतिक विद्रोह, जिसे इसके प्रारंभ में 'अरब क्रांति/अरब स्प्रिंग' का नाम दिया गया था, के बाद यह क्षेत्र राजनीतिक अस्थिरता और कट्टरता के साथ-साथ सांप्रदायिक तथा जातीय राजनीति, क्षेत्रीय शत्रुता और इसके पश्चात, धार्मिक कट्टर संगठनों तथा आतंकवाद के तेजी से पनपने के गहन दौर में प्रवेश कर गया है। अंतर्राष्ट्रीय समुदाय और विशेषकर पश्चिम (समुदाय) के मन में मिस्र और ट्यूनीशिया में इस्लामी ताकतों के उत्थान, यमन और लीबिया में जनजातीय राजनीति के पतन और सीरिया व इराक में बंटवारे तथा खूनी संघर्ष के साथ-साथ शिया-प्रेरित ईरान और सलाफी-प्रभावित सऊदी अरब के बीच क्षेत्रीय शीत-युद्ध राजनीति के उभार के बारे में कुछ आशंकाएं हैं।

इस्लामिक स्टेट इन इराक एण्ड सीरिया (आईएसआईएस) का संदर्भगत उत्थान और तत्पश्चात इसकी बढ़ती ताकत अशांति और चिन्ता का एक और स्रोत बन गई हैं जो वैश्विक शांति और सुरक्षा के लिए बड़ा खतरा पैदा कर रही हैं। इस क्षेत्र में अन्य अनेक खिलाड़ियों/संगठनों के बीच एक अस्थिरकारी ताकत के रूप में आईएसआईएस का उत्थान पहले से ही दुर्बल क्षेत्रीय प्रबंधन के लिए चुनौतीपूर्ण प्रतीत हो रहा है। इतना ही नहीं, एक विचारधारा के रूप में आईएसआईएस में वह क्षमता है कि यह विश्वभर से बहुत से युवकों को आकर्षित कर रहा है और भारत इससे अछूता नहीं है। ऐसी मीडिया रिपोर्टें हैं कि कुछ भारतीय मुसलमान युवकों ने भी इस समूह में शामिल होने के लिए देश छोड़ दिया है। ऐसी अनेक आईएसआईएस वेबसाइटें भी हैं जिनपर उर्दू, तमिल और अन्य भारतीय भाषाओं में उपदेशात्मक सामग्रियां मौजूद हैं और इनके दुष्परिणामों की अनदेखी नहीं की जा सकती।

नए स्वतंत्र राष्ट्रों के बीच विकासशील देशों की एकजुटता के लिए भारत के आग्रह और अपनी 70 प्रतिशत ऊर्जा जरूरतों को पूरा करने के लिए खाड़ी क्षेत्र पर तेल हेतु भारत की निर्भरता के कारण इस क्षेत्र के साथ भारत के राजनीतिक तथा आर्थिक संपर्क के लम्बे इतिहास से इनकार नहीं किया जा सकता और कहने की आवश्यकता नहीं कि थोक व्यापार स्वेज नहर के रास्ते ही किया जाता है। भारत 50 अरब अमरीकी डॉलर के बराबर प्रेषित-मुद्रा प्राप्त करता है और सत्तर लाख से अधिक प्रवासी भारतीय विभिन्न क्षेत्रों में व्यवसाय कर रहे हैं।

कुछ टीकाकारों ने पाया है कि भारत अतीत में इस क्षेत्र में हो रही गतिविधियों से इतना बेखबर कभी नहीं रहा। विदेश नीति की कार्यसूची/शब्दकोश से पश्चिम एशिया के क्रमिक परित्याग को शीत युद्ध की समाप्ति और एकपक्षीय वैश्विक व्यवस्था के उत्थान के परिणाम के रूप में देखा जा सकता है। शीत युद्ध के बाद वह दौर आया जब भारत अमरीका के नेतृत्व वाली विश्व व्यवस्था की ओर अग्रसर होना शुरू हुआ और इसने विभिन्न कार्यनीतिक तथा राजनीतिक कारणों से इज़रायल के साथ घनिष्ठ राजनीतिक

गठबंधन कायम किया जो चार दशकों से भी अधिक समय से 'गैर-प्राथमिक' रहा था। इस क्षेत्र के साथ अलगाव 9/11 युग के बाद तब और गहरा हो गया जब भारत ने पश्चिम एशिया से संबंधित मामलों पर चुप्पी साधने का रास्ता चुना। यह प्रतीतात्मक परिवर्तन भारत के प्रधानमंत्री के रूप में डॉ. मनमोहन सिंह के अंतिम कार्यकाल के दौरान प्रदर्शित हुआ। उन्होंने सऊदी अरब, कतर तथा ओमान का द्विपक्षीय दौरा केवल एक बार किया जो भारत के कार्यनीतिक हितों से मेल नहीं खाता। उन्होंने इस क्षेत्र की आर्थिक महत्ता, सांस्कृतिक तथा भौतिक घनिष्ठता और साझी सुरक्षा चिन्ताओं के बावजूद केवल एक बार ईरान और मिस्र की यात्रा गुटनिरपेक्ष सम्मेलन में भाग लेने के लिए की।

हाथ खींच लेने की भारत की यह नीति इस क्षेत्र में उथल-पुथल के दौर में एक बार फिर प्रदर्शित हुई जब यह 'सबसे भला चुप' उक्ति का पालन करता नज़र आया। सीरिया, लीबिया और इराक में संघर्षों के मामलों पर भारत ने तटस्थ रहने को प्राथमिकता दी और सबसे बढ़कर, चीन तथा रूस का प्रतियोगी बनने की बजाए उनकी राह पर चलना पसंद किया। सीरिया पर भारत का रूख ढुलमुल रहा जब एक ओर संयुक्त राष्ट्र में अमरीका और यूरोपीय संघ के साथ इसने मतदान किया लेकिन दूसरी ओर, जब उन्होंने राष्ट्रपति बसर-अल-असद को हटाने पर जोर दिया तो भारत उनका विरोध करता नज़र आया।

लीबिया के मामले में, भारत प्रारंभ में 'सुरक्षा के अधिकार' का आह्वान करते हुए रूस और चीन के साथ संयुक्त राष्ट्र में मतदान से अलग रहा लेकिन बाद में अमरीका और यूरोपीय संघ के सामने चुप्पी साध ली, जब उन्होंने लीबिया के कर्नल मुअम्मर गद्दाफी को हटाने के लिए संयुक्त राष्ट्र बहुमत को आदेश में बदल दिया।

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में एक क्षमतावान बहुमत-प्राप्त नीति की संभावनाओं के बारे में पश्चिम एशियाई शासकों के बीच नई आशंकाओं और मुस्लिम जगत में ज्यादा अनुकूल स्थिति प्राप्त देश पाकिस्तान के साथ टकराव वाली नीति ने इस क्षेत्र में भारत के लिए स्थिति को और भी जटिल और दुविधाजनक बना दिया है। भारतीय विदेश नीति के इज़राइल के पक्ष में और अधिक झुकने और इसके लिए इस क्षेत्र की अनदेखी चिन्ता का एक और कारण है।

इस क्षेत्र की मौजूदा स्थितियों ने भारत के लिए अनेक चुनौतियां पेश करने के साथ-साथ अनेक अवसर भी प्रदान किए हैं जहां यह अपना प्रभाव बढ़ा सकता है और एक बहुपक्षीय विश्व व्यवस्था के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है। यह क्षेत्र अनेक प्रकार के संकटों से घिरा हुआ है जिसके दूरगामी परिणाम हैं और भारत एक महत्वकांक्षी शक्ति तथा आर्थिक ताकत के रूप में मूक दर्शक बना

नहीं रह सकता। अप्रत्याशित गतिविधियों को देखते हुए, भारतीय शासन के लिए यह बुद्धिमानी नहीं होगी कि वह यह मान ले कि भारत इसके दुष्परिणामों से बचा रहेगा। मौजूदा परिस्थितियों में भारत के लिए बहुत कम दीर्घकालिक और अल्पकालिक नीतिगत विकल्प हैं।

दीर्घकालिक नीति विकल्प

- **इस क्षेत्र को प्राथमिकता देना**: भारत के लिए इस क्षेत्र की राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और कार्यनीतिक महत्व से इनकार नहीं किया जा सकता और भारत को तदनुसार अपनी नीतियों की प्राथमिकताएं तय करनी होंगी क्योंकि वैश्विक शांति और आर्थिक संपन्नता इस क्षेत्र में शांति व सौहार्द पर निर्भर करती है। भारत को अपनी विदेश नीति के परिदृश्य का विस्तार करना चाहिए और इसे तेल तथा धनप्रेषण का चश्मा उतारकर भी देखना चाहिए। भारत को पूर्वोन्मुख नीति की तर्ज पर 'पश्चिमोन्मुख नीति' नाम से एक नीति बनानी चाहिए। इस नीति को इस क्षेत्र की विभिन्न समस्याओं में भारत की अतिसक्रिय भागीदारी/संलग्नता द्वारा मजबूत बनाया जाना चाहिए।

- **राजनीतिक प्रभावकारिता**: आज की वैश्विक राजनीति की शानदार प्रभावकारिता को समझने की जरूरत है और तेजी से बदलते परिदृश्य को देखते हुए भारत को इस क्षेत्र के साथ राजनीतिक संबंधों/संपर्कों को घनिष्ठ बनाने की जरूरत है। भारत के लिए यह समय इस क्षेत्र के साथ और अधिक राजनीतिक तरीके से संपर्क साधने का है और भारत सरकार की ओर से इस क्षेत्र के अनेक उच्च स्तरीय दौरे किए जाने चाहिए ताकि यह अपनी राजनीतिक छवि निखार सके और भारत द्वारा इस क्षेत्र की अनदेखी के बारे में आशंकाओं का निराकरण कर सके। भारत के ऊर्जा हितों के लिए दो महत्वपूर्ण देश ईरान और सऊदी अरब हैं और भारत को तदनुसार इन दोनों देशों के साथ संपर्क बढ़ाना चाहिए।

- **उदार ताकत को बढ़ावा**: नि:संदेह भारत ने हाल के वर्षों में वैश्विक समुदाय में अपनी उदार-शक्ति छवि बनाई है और भारतीय शिक्षा प्रणाली ने वहां कुछ पैठ बनाई है। इसके अलावा, भारत इस क्षेत्र में अपनी फिल्मों, खेलों और संगीत को बढ़ावा देने की कोई युक्ति तलाश सकता है जो भारत की उदार-शक्ति छवि स्थापित करने में अत्यधिक सहायक साबित होगी जो आगे चलकर भारतीय कूटनीति का घटक बन सकती है। यह सर्वविदित तथ्य है कि भारतीय फिल्में मोरक्को और मिस्र जैसे अरब-अफ्रीकी देशों में बहुत अधिक लोकप्रिय हैं और भारत द्वारा इसे अधिक ठोस तरीके से बढ़ावा देने की आवश्यकता है लेकिन इस सक्रियता के साथ-साथ, धीरे-धीरे राजनैतिक

संपर्क भी कायम होना चाहिए, जिससे (भारत) अपनी उपस्थिति का अहसास जोर देकर नहीं, बल्कि एक जिम्मेदार वैश्विक ताकत के रूप में करा सके।

- **आतंकवाद विरोधी सहयोग**: हाल के वर्षों में भारत आतंकवाद के विरूद्ध लड़ाई में इस क्षेत्र में गठबंधनों को लामबंद करने में सफल रहा है और इसलिए, भारत को ज्यादा जोरदार तरीके से प्रयास करने चाहिए और आतंकवाद से लड़ने में अपने राजनीतिक सहयोगियों का समर्थन जुटाने में घनिष्ठ कार्यनीतिक संपर्क का विकल्प चुनना चाहिए। भारत कई (बम) धमाकों में संदिग्ध कुछ वांछित/वांटेड आतंकी संदिग्धों का सऊदी अरब से प्रत्यर्पण कराने में सफल रहा। तथापि, इन राजनीतिक सहयोगात्मक प्रयासों के मीडिया में बहुत अधिक प्रसारण से बचना चाहिए।

- **क्षेत्रीय नेतृत्व के लिए होड़ की पहचान**: भारत को, पश्चिम एशिया में नेतृत्व की भूमिका अदा करने के लिए बढ़ते शिया-सुन्नी और सांप्रदायिक मतभेद का संज्ञान लेना चाहिए। दोनों पक्ष, सऊदी अरब और ईरान, क्षेत्रीय नायकत्व की लालसा रखते हैं और दोनों ही पक्षों के लिए साम्प्रदायिक कार्ड बड़ा राजनीतिक सहारा है। भारत को इस सांप्रदायिक संकट में पड़ने की आवश्यकता नहीं क्योंकि भारत में स्वयं ही बड़ी संख्या में समुदाय और जातियां हैं जिनके आपस में सौहार्दपूर्ण संबंध नहीं हैं। भारत के विभिन्न शहरों में बढ़ती शिया-सुन्नी शत्रुता की रिपोर्टें हैं और सरकार को एकजुटता के तरीके अपनाने चाहिए और एक तंत्र/व्यवस्था विकसित करनी चाहिए जो इस क्षेत्र में सांप्रदायिक तथा जातीय शत्रुता के पश्च-प्रभाव को रोक सके। तथापि, भारत को इस मतभेद में किसी एक पक्ष का बहुत अधिक समर्थन करने का विकल्प नहीं चुनना चाहिए क्योंकि दोनों की ही जड़े धार्मिक अतिवाद तक गहरी हैं।

- **अरब देशों में रोजगार के स्थानीयकरण के लिए तैयार होना**: 'अरब क्रांति' ने भारत को एक नई अप्रिय स्थिति में डाल दिया है। इस क्षेत्र में राजनीतिक विद्रोह ने खाड़ी के शासकों को अपने शासन पर मंडराते राजनीतिक खतरे को कम करने के लिए रोजगार के स्थानीयकरण पर मजबूर कर दिया है जिसका नकारात्मक प्रभाव उन भारतीयों पर पड़ने की अत्यधिक संभावना है जो इसके आर्थिक ताने-बाने के अभिन्न अंग हैं। भारतीय शासन को इस नई नीति के पश्च-प्रभाव के अनुरूप अपनी नई आर्थिक नीति को ढ़ाल लेना चाहिए क्योंकि (उनकी नई नीति) भारतीय शिक्षित कामगारों के विस्थापन का कारण बन सकती है जो अंतत: भारतीय रोजगार बाजार पर बोझ डाल देंगे। निजी क्षेत्र में निम्न तथा मध्यम स्तरीय रोजगार के अलावा सऊदी अरब में सरकारी क्षेत्र में भारतीय बड़ी संख्या में हैं। सऊदी अरब ने पहले ही अपने नागरिकों को रोजगार

देने संबंधी अरबीकरण नीति प्रारंभ/लागू कर दी है और घरेलू कार्मिकों के लिए कोटा बढ़ा दिया है। भारत को उन लोगों के लिए एक वैकल्पिक योजना तैयार करने की आवश्यकता है जो अरब रोजगार बाजार के अरबीकरण 'निताकत' योजना के उत्तरोत्तर कार्यान्वयन के पश्चात वापस (भारत) आ सकते हैं।

- **इज़राइल और इस क्षेत्र के अन्य राष्ट्रों के बीच संतुलित व्यवहार की प्रतिबद्धता**: नई सरकार को इज़रायल के साथ घनिष्ठ कार्यनीतिक संबंध के लिए प्रतिबद्ध रहना होगा लेकिन इसे इस क्षेत्र के संबंध में अपनी नीति इस प्रकार से तैयार करनी चाहिए कि इज़राइल तथा अन्य अरब देशों दोनों से प्रतिबद्धताएं सुनिश्चित की जा सकें कि एक पक्ष के साथ इसके संबंध इस क्षेत्र के अन्य राष्ट्रों के साथ इसके संबंधों को प्रभावित नहीं करेंगे और सभी के हितों का सम्मान करना ही एकमात्र मानदण्ड होगा। भारत सरकार को इस क्षेत्र में संवेदनशील मुद्दों को सुलझाते समय सावधानीपूर्वक आगे बढ़ना चाहिए और इज़रायल के साथ कार्यनीतिक गठबंधन को फिलीस्तीन के मुद्दे के प्रति इसकी दशकों पुरानी राजनीतिक प्रतिबद्धता को कायम रखने के मार्ग की रूकावट नहीं बनना चाहिए।

- **अनुकूल उद्यमशीलता वातावरण**: भारत की नई शासन व्यवस्था को स्पष्ट शब्दों में बताना होगा कि भारत इस क्षेत्र में सभी के साथ व्यापार के लिए स्वतंत्र है। भारत को व्यापारियों के कुछ वर्गों के इस डर को भी दूर करने की जरूरत है कि नई व्यवस्था का राजनीतिक आधार इसके पारदर्शी एवं सुदृढ़ व्यापार, व्यवसाय और निवेश के मार्ग की बाधा नहीं बनेगा। भारत के लिए यह समय परंपरागत क्रेता-विक्रेता से आगे बढ़ने का है और सभी क्षेत्रों को समाहित करके इस क्षेत्र के साथ व्यापक संबंध तैयार करने का है। सबसे प्रमुख बात, नई सरकार की ओर से परंपरागत लालफीताशाही को दूर करने और उलझन-मुक्त बातावरण का सृजन करने के अतिरिक्त प्रयास किए जाने चाहिए जो अब तक दोनों पक्षों के बीच व्यापार की मात्रा बढ़ाने में सबसे बड़ी बाधा रही है।

- **एक संतुलित और व्यावहारिक तौर-तरीका**: भारत को इस क्षेत्र के सभी शासकों के साथ अपने संबंध विकसित करने में अपने तौर-तरीकों/एप्रोच में व्यवहारिकता की नीति अपनाने की आवश्यकता है। भारत ईरान से तेल, इज़रायल से रक्षा उपकरण खरीदता है और खाड़ी (के देशों) में इसके साठ लाख प्रवासी रहते हैं। भारत को अच्छे व्यापार, अच्छे जनसंपर्क तथा और अधिक कार्यनीतिक संबंधों की आवश्यकता है ताकि यह मीडिया कार्यक्रमों के माध्यम से इस क्षेत्र से

अपने हित साध सके।

अल्पकालिक नीतिगत विकल्प

- **बड़ी शक्तियों का प्रबंधन**: भारत को पश्चिम एशिया के वर्तमान उथल-पुथल में चीन, रूस और अमरीका जैसे बड़े खिलाड़ियों की संलग्नता के तथ्यों का संज्ञान होना चाहिए। भारत को चीन जैसे बड़े खिलाड़ी की अत्यधिक आर्थिक संलग्नता के बीच इसके अपने कार्यनीतिक तथा आर्थिक हितों की रक्षा करनी होगी और इसे सभी खिलाड़ियों की सभी नीतियों का समर्थन नहीं करना चाहिए।

- **भारत को दोनों क्षेत्रीय शक्तियों से वार्ता करनी होगी**: ऐसी आशंका बढ़ रही है कि अरब क्रांति अरब-फारस शीत युद्ध में बदल चुकी है। भारत को या तो दोनों छोरों से समान दूरी बनाए रखनी चाहिए अथवा दोनों पक्षों ईरान और सऊदी अरब के साथ वार्ता करनी चाहिए। दोनों देश क्षेत्रीय शक्तियां होने के कारण भारत के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है और उनकी कार्यनीतिक और आर्थिक प्रासंगिकता को कम करके नहीं आंका जा सकता।

- **आईएसआईएस के विरूद्ध युद्ध**: भारत आईएसआईएस के अभ्युदय से होने वाले खतरे के प्रति चिंतित है और इसे आईएसआईएस के विरूद्ध अपना पूर्ण समर्थन देना चाहिए। यदि अवसर मिले तो भारत को संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के संकल्प का समर्थन करना चाहिए जो इसके द्वारा किए गए उत्पीड़नों की निंदा कर सकता है। यह वह अवसर होगा जब नैतिक, राष्ट्रीय और मानवीय सिद्धांतों में एकमत होगा। भारत को बदलावों से गुजर रहे अनेक देशों में वास्तविक विपक्षों अथवा विद्रोही समूहों तथा आतंकवादी समूहों के बीच बढ़ती दखलंदाजी के प्रति सजग रहना चाहिए। भारत को इस क्षेत्र में लोकतंत्र के लिए आवाज उठाने वालों के प्रति एकजुटता व्यक्त करते समय जल्दीबाजी में कोई रूख नहीं अपनाना चाहिए।

**डॉ फज्जुर रहमान सिद्दीकी विदेश मामलों की भारतीय परिषद, नई दिल्ली में अनुसंधान अध्येता हैं। लेखक द्वारा व्यक्त किए गए विचार उनके व्यक्तिगत विचार हैं।*